विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com
Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
प्राचीन भारत में विज्ञान की परंपरा
डॉ. राकेश कुमार दुबे

पृष्ठ क्र. 4-5
भारतीय कृषि कर्म की यात्रा
जयप्रकाश परिहार

पृष्ठ क्र. 6-7
वृहत्तर भारत का स्थापत्य
अभिषेक शुक्ला

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक समीक्षा
महापथ
मिथिलेश यादव

प्राचीन भारत में विज्ञान की परंपरा

डॉ. राकेश कुमार दुबे

जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है और संसार की सर्वोत्तम वस्तु ज्ञान बनाया गया, उसको प्राप्त करने में भारत के लोग कभी भी किसी से पीछे नहीं रहे, ऐसा लोक कथाओं एवं लिखित साक्ष्यों से प्रमाण मिलता है। जब से विद्या सोपान की रचना हुई तभी से यह अमूल्य पदार्थ भाग्यशाली भारतवासियों को प्राप्त होता रहा और उसी के बल पर यहाँ के लोग प्राचीनकाल से ही ज्ञान प्राप्त करते रहे। जिस काल में संसार के अधिसंख्य देशों के निवासी गुफाओं एवं कंदराओं में रहते हुए जंगली एवं असभ्य जीवन जी रहे थे, उस काल में भारतवासी ज्ञान–विज्ञान में उन्नति कर एक सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर चुके थे और उनकी सभ्यता उच्चासन को प्राप्त कर चुकी थी। भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान विज्ञान के विकास में प्राचीन भारतीयों का जो योगदान रहा है, उसके महत्व को स्वीकार न कर यही प्रचारित किया जाता रहा कि विज्ञान पाश्चात्य देशों की देन है। पाश्चात्य देशों ने विज्ञान का प्रारंभिक ज्ञान यूनान से प्राप्त किया था अतः उन्होंने यूनानी सभ्यता को ही विज्ञान के सूत्रपात का श्रेय दिया और अज्ञानवश भारतीय योगदान की सर्वथा उपेक्षा की। भारतीय प्राच्यविद एवं इतिहासकार भी इसी मत का अनुसरण करते रहे। इतिहास ग्रंथों में विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों द्वारा संपन्न कार्यों का उल्लेख हुआ ही नहीं। ''अति प्राचीन काल में वैज्ञानिक शास्त्र भारतवर्ष के अमूल्य शास्त्रों में से था। यद्यपि अब कोई प्राचीन पुस्तक इस विद्या पर नहीं मिलती परंतु और ग्रंथों से यह बात सर्वथा सिद्ध होती है कि अन्य शास्त्रों की भाँति इस शास्त्र में भी भारत के ऋषि मुनि निपुण थे।'' प्राचीन भारत में विज्ञान का अस्तित्व था और संस्कृत में लिखे जो प्राचीन ग्रंथ अब उपलब्ध हैं और जिन ग्रंथों के संदर्भ मिलते हैं उनसे यह प्रामाणित होता है कि प्राचीन मनीषियों ने ज्ञान–विज्ञान के किसी भी क्षेत्र को अछूत नहीं माना था। ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर प्राचीन भारतीय इतिहास का कालक्रम से अध्ययन किया जाय तो इसके लिए उस काल के स्रोतों का अध्ययन करना होगा। भारत के विषय में लिखित साक्ष्य ऋग्वैदिक काल से मिलता है और इससे पूर्व का संपूर्ण इतिहास पुरातात्विक स्रोतों पर आधारित है। वैदिक काल से जो लिखित सामग्री प्राप्त होती है वह संस्कृत भाषा और काव्य शैली में मिलती है क्योंकि भाषा की शोभा साहित्य और साहित्य की शोभा काव्य से होती है, इसी मूल पर हमारे यहां के विद्वानों ने सब आरंभिक ग्रंथ काव्य शैली में लिखे। पुरातात्विक स्रोतों में शिलालेखों, सिक्कों, मूर्तियों तथा स्थापत्य की कृतियों आदि के रूप में जो विशाल सामग्री उपस्थित हुई है उससे भारत की विज्ञान एवं औद्योगिक उन्नति की बातों का पता चलता है।

भारत का संपूर्ण आरंभिक साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा हुआ प्राप्त होता है और इस साहित्य पर पाश्चात्य लेखकों ने यह आरोप लगाया कि इनमें विज्ञान विषयक जानकारियों का अभाव है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध विज्ञान लेखक श्यामनारायण कपूर ने इतिहासकार ए.बी. कीथ के मत का उद्धरण दिया और उसका खंडन करते हुए लिखा कि ''संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित इतिहासकार ए.बी. कीथ ने लिखा कि ''संस्कृत साहित्य के उत्कर्ष काल में व्यवहारिक विज्ञान की कोई चर्चा नहीं है। विशेषतः उन क्षेत्रों की जहां प्रयोगात्मक ज्ञान अपेक्षित है।'' परंतु जो नवीन अनुसंधान हुए और प्राचीन दुर्लभ संस्कृत ग्रंथों का अनुशीलन और अध्ययन हुआ उससे यह स्पष्ट हो गया कि व्यवहारिक विज्ञान के क्षेत्र में भी प्राचीन भारतीयों का योगदान किसी भी प्रकार से नगण्य या कम महत्वपूर्ण नहीं था।'' भारत के संदर्भ में व्यवस्थित पुरातात्विक साक्ष्य सिंधु सभ्यता से मिलता है और इस सभ्यता की खोज के बाद भारतीय सभ्यता मिश्र, असीरिया, सुमेरियन इत्यादि के समकालीन अथवा उससे भी प्राचीन सिद्ध

हुई और इस सभ्यता की कुछ ऐसी उपलब्धियाँ थीं, जो समकालीन किसी भी सभ्यता में दिखलायी नहीं पड़ती। 1921–22 ई. में इस नवीन सभ्यता की खोज हुई और खुदाई के दौरान जो विशाल पुरातात्विक सामग्री उपस्थित हुई उसके अध्ययन से इस सभ्यता के निवासियों के रहन–सहन, खानपान, परिधान, समाज, संस्कारों के साथ ही उनकी कला–कुशलता का भी ज्ञान मिलता है।

सिंधु सभ्यता के जो अवशेष मिले हैं उससे यह ज्ञात होता है कि विज्ञान के क्षेत्र में भी सिंधु सभ्यतावासियों का योगदान महत्वपूर्ण था। व्यवस्थित नगर नियोजन, पक्की और विशिष्ट आकार की ईंटों से भवनों का निर्माण, घर के अंदर कुएं एवं सीढ़ियों का बनाया जाना, चौड़ी और एक दूसरे को समकोण पर काटती सड़कें, माप तौल के लिए विशिष्ट बाटों का प्रयोग तथा विशिष्ट अवसरों के लिए निर्मित किया गया विशाल स्नानागार सिंधुवासियों के वैज्ञानिक ज्ञान की परिपक्वता को प्रदर्शित करता है। भारत के विषय में लिखित साक्ष्य ऋग्वैदिक काल से मिलता है और ऋग्वेद इस संदर्भ में प्रथम ग्रंथ है। ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम् पुस्तक है जो प्राचीन भारतीय आर्यों की राजनीतिक व्यवस्था के साथ ही उनके ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, धर्म, कला एवं साहित्यिक उपलब्धियों का एकमात्र स्रोत है। यह संपूर्ण ग्रंथ ऋचाओं में लिखा गया है। पाश्चात्य लेखकों द्वारा आर्यों के बारे में यह लिखा गया कि वे कबीलाई जीवन जीने वाले चरवाहे थे जो विभिन्न समूहों में विभाजित थे। परंतु यदि वास्तव में वे चरवाहे होते तो उनके ग्रंथ इतनी श्रेष्ठ भाषा एवं शैली में नहीं होते। भौतिक जगत को समझने की चेष्टा सर्वप्रथम प्राचीन आर्यों ने ही आरंभ की थी। ऋग्वेद ग्रंथ के 'विश्वकर्मा सूक्त' में इस प्रकार के प्रश्न उठाये गये है कि 'सृष्टि का अधिष्ठान क्या है? इसका आरंभ कैसे हुआ? किस पदार्थ से यह जगत बना? इसका रचयिता कौन है?' इन प्रश्नों में से कुछ का उत्तर तो अभी आधुनिक भौतिकी को भी देना बाकी है। इसी प्रकार ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में इस बात का संकेत किया गया है कि सृष्टि के आरंभ में गहन गंभीर अंभस (अथाह जल) था और आधुनिक विज्ञान का भी इस बारे में यही मत है।

विज्ञान का विकास भारत में वैदिक काल से ही प्रारंभ हो जाता है। वेदों में गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं कृषि सदृश अनेक व्यवसायिक विज्ञानों के विकसित होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। वैदिक सभ्यता यज्ञ प्रधान रही है। विभिन्न उद्देश्यों से लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युत्थान हेतु कई प्रकार के यज्ञ नियमित रूप से होते रहते थे। इसके लिए विशिष्ट प्रकार की ज्यामितीय आकार की वेदिकाएँ बनती थीं। यज्ञों के लिए मुहूर्त निश्चित होते थे। यज्ञों की सुव्यवस्था एवं सफल संपादन के लिए गणित, ज्यामिति और ज्योतिष तथा खगोल विज्ञान विकसित हुए। गणित विशेषतः उसकी दार्शनिक अंक प्रणाली और शून्य का आविष्कार विश्व को भारत की सबसे महत्वपूर्ण देन स्वीकार की जाती है। वास्तव में वैदिक यज्ञ संस्था को ज्ञान–विज्ञान की और भी अनेक शाखाओं के सूत्रपात और विकसित करने का श्रेय है। देश की समृद्धि और आर्थिक प्रगति के लिए विज्ञान का उपयोग अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। वैदिक काल में खेती, पशुपालन और साथ ही वस्त्रोद्योग भी उन्नत अवस्था में था। सूत की कताई का प्रथम जन्म ऋग्वेद से परिचित मानव समूह में हुआ और ऐसा माना जाता है कि कताई का आविष्कार भारत की आर्य परंपरा ने किया। 'तन्तुं तनुष्व', 'तन्तुमातन्वते' आदि शब्द तन्तु निकालकर तानने के अर्थ में ऋग्वेद के अनेक स्थलों में पाये जाते हैं। वैदिक साहित्य में चरखा और ताने–बाने से वस्त्र उत्पादन के साथ ही रंगीन वस्त्रों के भी उल्लेख हैं। निश्चय ही कपड़ा रँगने की प्रक्रिया ज्ञात हो चुकी होगी। वैदिक साहित्य में ऊर्णा (ऊन) के वस्त्रों का जिक्र मिलता है। गांधार (आधुनिक पेशावर जिला तथा उसके आसपास के क्षेत्र) की ऊन सबसे अधिक प्रसिद्ध थी। रेशमी वस्त्र भी तैयार किए जाते थे। इसके लिए वैदिक साहित्य में 'क्षौम' और 'तार्प्य' शब्द मिलते हैं।

उपनिषद् काल में भी ज्ञान–विज्ञान की उन्नति के उल्लेख मिलते हैं अैर इस काल में ज्योतिष के अलावा अन्य शास्त्रों की भी उन्नति हुई। वैदिक साहित्य–वेद, वेदांग, ब्राम्हण एवं उपनिषद् प्रभृति उच्च कोटि की आध्यात्मिक रचनाओं के साथ ही ऋषियों ने आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणित, ज्योतिष, रसायन, शिल्प, पशु चिकित्सा इत्यादि व्यवहारिक वैज्ञानिक विषयों पर भी लेखन कार्य किया और ज्ञान विज्ञान के उपयोग की कोई विधि और क्षेत्र ऐसा नहीं था जिस पर भारतीयों ने ध्यान न दिया हो। प्राचीन भारतीय ग्रंथों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही जगदीशचंद्र बसु आधुनिक वैज्ञानिकों के समक्ष स्वनिर्मित यंत्रों द्वारा पेड़ पौधों और वनस्पतियों को प्रत्यक्ष रूप से सजीव सिद्ध करने में सफल हुए थे। इसी प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय ने रसायन संबंधी प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करके उनके आधार पर तत्कालीन भारतीय रसायन विज्ञान सम्बन्धी अपने शोधों से पाश्चात्य रसायनविज्ञों को आश्चर्यचकित कर दिया था। शक्तिशाली गुप्तों के उदय के फलस्वरूप भारत में एक बार पुनः ज्ञान–विज्ञान की उन्नति दिखलायी पड़ती है। वाकाटक–गुप्तकाल को भारत में शिल्प एवं वाणिज्य की उन्नति के काल के रूप में भी जाना जाता है। इस युग में जिस प्रकार सामाजिक, कलात्मक एवं साहित्य क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई, उसी प्रकार आर्थिक एवं वैज्ञानिकृ दृष्टि से भी यह काल उन्नत रहा। भारत के तत्कालीन राजवंशों में गुप्त, वाकाटक, कदंब तथा पल्लव शासकों ने देश के शिल्प एवं वाणिज्य की उन्नति में सहयोग दिया। इस काल में देश धन–धान्य से संपन्न हो गया था। व्यवसायिक नगरों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। अब भड़ौच, पैठण, विदिशा, उज्जैनी, पाटलिपुत्र, कुंडिनपुर, मथुरा, अहिच्छत्र, कौशांबी, प्रयाग, अयोध्या,

काशी, वैशाली आदि कितने ही बड़े नगर दिखलाई पड़ने लगे थे। देश में अनेक प्रकार के शिल्प उन्नति पर थे। वस्त्रोद्योग, जवाहरातों का काम, लोहा, ताँबा, लकड़ी तथा हाथीदांत के उद्योग बहुत बढ़े–चढ़े थे। विविध क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति के कारण ही गुप्त काल भारतीय इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से प्रसिद्ध है। गुप्तकाल में आर्यभट्ट के अलावा भास्कर प्रथम, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त इत्यादि कई गणितज्ञ एवं ज्योतिषाचार्य हुए जिन्होंने गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी। आर्यभट्ट प्रथम के शिष्य भास्कर प्रथम ने 'महाभास्करीय' और 'लघुभास्करीय' जैसी उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की परंतु इनसे भी श्रेष्ठ आचार्य हुए वराहमिहिर, जिन्होंने ज्योतिष की प्रत्येक शाखा पर ग्रंथ लिखा। वराहमिहिर का प्रसिद्ध ग्रंथ 'पंचसिद्धांतिका' है जिसमें पाँच सिद्धांतों–पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, सौर और पैतामह का संग्रह है। इनके अन्य ग्रंथ 'वृहत्संहिता' या 'वाराहीसंहिता' और 'वृहज्जातक' हैं, जिनमें ग्रहणों की गणना करने का विशेष प्रसंग है। ब्रह्मगुप्त का योगदान भी इस युग में अति महत्वपूर्ण था। उनका ग्रंथ 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' है जिसमें 24 अध्याय है। वह संसार के पहले गणितज्ञ हैं जिन्होंने एक विशिष्ट प्रकार के अनिर्धारित वर्ग समीकरण का हल प्रस्तुत किया। आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त को भारत के साथ ही विश्व के अग्रणी ज्योतिषाचार्य एवं गणितज्ञ होने का गौरव प्राप्त है। भास्कराचार्य जैसे उत्कृष्ट भारतीय आचार्य ने ब्रह्मगुप्त को 'गणकचक्रचूड़ामणि' कहा है, और इनके मूलांकों को अपने 'सिद्धांतशिरोमणि' का आधार माना है। शून्य का आविष्कार एवं दाशमिक प्रणाली का विकास और इसकी सहायता से दश, शत, सहस्त्र आदि का व्यक्त करना संसार की सबसे बड़ी खोजों में से एक है और प्रसिद्ध विज्ञान–लेखक श्यामनारायण कपूर इसे प्राचीन भारतीयों की 'विश्व को सबसे बड़ी देन' बतलाया है और लिखा है कि ''प्राचीन भारतीयों–विशेष रूप से वैदिक काल के भारतीयों की विश्व को सबसे बड़ी देन गणित और उसकी संख्याओं का आविष्कार तथा दाशमिक प्रणाली है। दाशमिक प्रणाली में भी सबसे अधिक महत्व शून्य का है। विज्ञान की जो प्रगति आज हो रही है उसकी कल्पना भी 'शून्य' के बिना नितांत असंभव है।'' वास्तव में गणित में शून्य का प्रयोग करना इस देश का बड़ा ही महत्वपूर्ण आविष्कार है। विक्रम सम्वत् के आरंभ में ही इसका आविष्कार हो गया था और संख्याओं की श्रेणी में इसे स्थान मिल गया था। वराहमिहिर की 'पंचसिद्धांतिका' में जोड़ और बाकियों में शून्य के प्रयोग का उल्लेख है अर्थात् यह बताया गया है कि शून्य में से कैसे घटाया या जोड़ा जा सकता है। प्राचीन भारतीयों द्वारा शून्य और दाशमिक प्रणाली के आविष्कार किये जाने की सराहना श्लेगल जैसे विद्वान ने भी मुक्तकंठ से की और बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अपना विचार व्यक्त किया था कि मनुष्य द्वारा किये गये आविष्कारों में वर्णमाला के बाद 'दाशमिक स्थानमान पद्धति' का आविष्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दाशमिक स्थानमान पद्धति शून्य के प्रयोग पर आधारित है। यदि शून्य और दाशमिक स्थानमान पद्धति का आविष्कार न हुआ होता तो भारतीय अंक, अन्य अंकों से न तो श्रेष्ठ समझे जाते और न ही उनका सर्वत्र आदर होता।

गुप्तकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण दिल्ली का लौहस्तंभ है। दिल्ली में मेहरौली में कुतुबमीनार के निकट स्थापित यह लौहस्तंभ भारतवर्ष के लौह निर्माण कौशल का जीता–जागता नमूना है जो यह प्रामाणित करता है कि गुप्तकाल में खनिज विज्ञान अत्यंत विकसित अवस्था में था और यहां के लोगों को धातु शोधन और ढलाई की कला में विशेष दक्षता प्राप्त थी। भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए और युद्धों में सभ्यता और संस्कृति के कितने ही अवशेष नष्ट हो गये। भारत में जो स्थापत्य और कलात्मक अवशेष बचे है उनके अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि भारत में जहाजों का अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है। पुरी का जगन्नाथ मंदिर बारहवीं सदी में बना है। उस पर भी जहाज का चित्र खींचा हुआ है। भुवनेश्वर में ही एक पुराना मंदिर है जो बिन्दु सरोवर के पश्चिम में स्थित है। मंदिर का नाम वैतालद्यूल है। वैतार (ल) शब्द का अर्थ 'जहाज' है और चूँकि यह मंदिर जहाज के आकार का बना है इसलिए इसका नाम वैताल पड़ा। इन चित्रों से भी इस बात को काफी बल मिलता है कि प्राचीन भारत में जलयानों एवं नौकाओं का निर्माण होता था। एक प्रश्न यह भी उठता है कि यदि प्राचीन भारत में विज्ञान की इतनी सशक्त परंपरा थी तो फिर उसकी अवनति क्यों हुई? इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भारत की मौखिक परंपरा और दूसरे परवर्ती काल में जाति बंधन की कठोरता इसके लिए बहुत हद तक उत्तरदायी मानी जा सकती है।

इस काल में कई ऐसे आचार्य हुए जिन्होंने गणित और ज्योतिष में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर प्राचीन भारत का गौरव बढ़ाया जिनमें प्रथम नाम आर्यभट्ट का आता है जिन्होंने संस्कृत की वर्णमाला को संख्यामान प्रदान करके एक नई अक्षरांक पद्धति को जन्म दिया। आर्यभट्ट अपने ग्रंथ 'आर्यभटीय' में जानकारी दिये है कि 23 साल की आयु में 499 ई. में उन्होंने 'आर्यभटीय' की रचना की। वह एक श्लोक में यह भी जानकारी देते हैं कि अपने ग्रंथ की रचना उन्होंने कुसुमपुर में की, जिसे आजकल पटना कहा जाता है। आर्यभट्ट के आर्यभटीय में केवल 33 श्लोक हैं और इन 33 श्लोकों में ही उन्होंने अपने समय तक ज्ञात गणित की सभीं प्रमुख बातों को भर दिया है। पुस्तक के आरंभ में अंकगणित के परिकर्मा के नियम दिये हैं फिर रेखागणित के नियम। आर्यभट्ट एक विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे जिन्होंने अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति और ज्योतिष के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान दिया। उनकी एक बहुत ही बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने पाई का एक काफी शुद्ध और सन्निकट मान दिया है। आर्यभट्ट से पहले किसी भी गणितज्ञ ने पाई का इतना शुद्ध मान नहीं दिया था।

भारतीय कृषि कर्म की यात्रा

जयप्रकाश परिहार

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के अनुसार "कृषि" शब्द की उत्पत्ति "कृष" धातु से हुई है, जिसका तात्पर्य कर्षण क्रिया अर्थात जुताई से ही कृषि क्रिया का शुभारंभ होता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कथन है कि अश्विन देवताओं ने मनु को हल चलाना सिखाया। ऋग्वेद में एक स्थान पर 'अपाला' ने अपने पिता 'अत्रि' से खेतों की समृद्धि के लिए प्रार्थना की है। भारत में कृषि की गौरवशाली परंपरा रही है, बहुत से पौराणिक ग्रंथ एवं इतिहासकारों द्वारा किया गया शोध यह दर्शाता है कि देश में सिंधु घाटी सभ्यता के दौर में भी कृषि व्यवस्था अर्थव्यवस्था की रीढ़ हुआ करती थी। विभिन्न कालखंडों का अग्रलिखित अध्ययन इस तथ्य को पुष्ट करता है कि भारत में कृषि पुरातन काल से ही अनवरत की जा रही है। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों से हमें व्यवस्थित ढंग से कृषि और पशुपालन करने के प्रमाण मिलते है। आर्य लोग खेतों की जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई आदि क्रियाओं की बहुत अच्छी तरह से संपन्न करते थे। भूमि के उपजाऊपन के लिए पशुओं की गौरव की खाद का प्रयोग भी करते थे। धीरे–धीरे करके भारत में कृषि का क्रमिक रूप से विकास होता गया। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इतिहासविदों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वैदिक काल में बीजवपन, कटाई आदि क्रियाएँ की जाती थी, हल, हंसिया, चलनी आदि उपकरणों का चलन था तथा इनके माध्यम से गेहूं, धान, जौ आदि अनेक धान्यों का उत्पादन किया जाता था। चक्रीय परती पद्धति के द्वारा मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने की परंपरा के निर्माण का श्रेय भी प्राच्यकालीन कृषकों को जाता है, रोम्सबर्ग (यूरोपीय वनस्पति विज्ञान के जनक) के अनुसार इस पद्धति को बाद में पाश्चात्य जगत में भी अपनाया गया। इसके अतिरिक्त "कृषि पाराशर" के अंतर्गत भी कृषि दर्शन का उल्लेख मिलता है। नारदस्मृति, विष्णु धर्मोत्तर, अग्नि पुराण आदि में भी कृषि के संदर्भ में उल्लेख मिलते हैं। कृषि पाराशर तो विशेष रूप से कृषि की दृष्टि से एक मान्य ग्रंथ माना जाता है, जिसमें कुछ विशेष तथ्यों का दर्शन मिलता है।

सिन्धु नदी का स्थान ऋग्वेद में एक पुरुष योद्धा का है, इस नदी के पूर्व की कृषि व्यवस्था और इसके पश्चिम की 'शेफर्ड' या चरवाहा व्यवस्था ऐतिहासिक किताबों में उल्लेखित हैं। हिन्द की संस्कृति इसी नदी के पूर्व खेती, प्रकृति के स्वरूपों जैसे अग्नि, सूर्य, वरुण, जल, धरती, जंगल के स्वरूपों और इनके साथ सह अस्तित्व पर आधारित है। पुराण युगीन कृषि विकास की सम्पूर्ण जानकारी तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु सिंधुनदी घाटी सभ्यता पर शोध के दौरान कांठे के पुरावेशों के उत्खनन से इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि तकरीबन पाँच हजार वर्ष पूर्व कृषि अत्याधिक उन्नत अवस्था में थी। यहाँ राजस्व का भुगतान अनाज के रूप में किया जाता, यह अनुमान साहित्यकारों और पुरातत्ववेत्ताओं ने मोहनजोदड़ो में उत्खनन से मिले बड़े–बड़े कोठारों के आधार पर लगाया है। इसके अतिरिक्त खुदाई में प्राप्त हुए गेहूं एवं जौ के नमूनों से उनके उक्त समय मुख्य फसल के रूप में पाए जाने की भी पुष्टि हुई हैं। इन सभी साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि सिंधु घाटी सभ्यता में कृषि जीविका का मुख्य स्तंभ थी।

मुख्य रूप से यह काल रजवाड़ों, विद्रोह, विदेशी आक्रमणों का काल माना गया है, परन्तु यहां भी जीविका के प्रमुख उपागम के रूप में कृषि प्रधान थी। इसका उल्लेख बहुत से ऐतिहासिक लेखों में मिलता है कि कृषि के आधार पर लगान आदि का भुगतान जनता द्वारा किया जाता था, जिससे सम्पूर्ण प्रशासन सुचारू रूप से चला करता था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में मौर्य राजाओं के काल में कृषि, कृषि उत्पादन आदि को बढ़ावा देने हेतु कृषि अधिकारी की नियुक्ति का वर्णन मिलता है। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने भी लिखा है कि मुख्य नाले और उसकी शाखाओं में जल के समान वितरण को निश्चित करने व नदी और कुओं के निरीक्षण के लिए राजा के द्वारा अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। चारों वेदों से गेहूं, जौ, उरद, मूंग आदि अनाजों के विषय में सूचना मिलती है। ऋग्वेद के अंतिम मण्डल में धान का भी उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद तथा दूसरे संहिताओं में कृषि उपकरणों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे– द्रोण, अश्मचक्र, सूप, चलनी, सिल आदि। अतरंजीखेड़ा से जौ, चावल एवं गेहूँ के साक्ष्य मिले हैं। हल के लिए 'सीर' तथा गोबर की खाद के लिए 'करीष' शब्द प्रयोग किये जाते थे। इस काल में सिंचाई के साधनों में तालाबों एवं कुओं के साथ पहली बार अथर्ववेद में नहरों का उल्लेख हुआ है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इन कृत्रिम जल संसाधनों का कितना अधिक महत्व था, यह इस सम्बन्ध में कौटिल्य द्वारा दी गयी व्यवस्था से ज्ञात हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति नवीन तड़ाग या बाँध निर्मित कराता है, तो उसे पाँच वर्ष तक कर में छूट दी जाती थी, यदि किसी व्यक्ति द्वारा भग्न तड़ाग आदि का जीणोद्धार किया गया हो तो वार वर्ष की, यदि बहुत काल तक उपेक्षा के कारण कोई तड़ाग घास एवं झाड़ियों से ढक गया हो और उसकी सफाई करायी गई तो तीन वर्ष की और यदि कोई सूखी एवं परती पड़ी भूमि को खेती योग्य बनाता है तो दो वर्ष तक कर में छूट राज्य द्वारा दी जाती थी। पुण्य कार्य मानते हुए यदि कभी किसी व्यक्ति ने धर्मसेतु या तड़ाग को बनवाया हो और बाद में कोई अन्य व्यक्ति ऐसे तड़ाग को बन्धक रख दे या उसका विक्रय कर दे तो ऐसे व्यक्ति पर मध्यम कोटि का दण्ड लगाया जाता था। जल संसाधन सम्बन्धी इस प्रकार की व्यवस्था जिसमें तड़ागादि के निर्माण में कर छूट एवं उसे विनष्ट करने में दण्ड का निर्धारण कृषि को समृद्धि करने में अवश्य ही सहायक होगी। राज्य स्तर पर भी इस काल में सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। जैसा कि महाक्षत्रप रूद्रदामन

के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में उसके राष्ट्रिक वैश्य पुष्यगुप्त ने सुदर्शन झील का निर्माण कराया था और पुनः अशोक के शासन काल में उसके अधीनस्थ यवनराज तुषाष्प ने इस झील से अनेक छोटी–छोटी नालियाँ बनवाई थीं। सिंचाई के लिए किये गये इस प्रकार के कार्य जो व्यक्तिगत और राजकीय दोनों स्तर पर थे, मौर्य शासकों की कृषि नीति के ही अनुभाग थे।

कृषि मात्र एक खाद्य पदार्थ उत्पादन प्रणाली नहीं है, अपितु सम्पूर्ण मानवीय अर्थव्यवस्था का आधारभूत स्तंभ है। घुमंतू मानव के जीवन को स्थायित्व देने का सर्वप्रमुख कारक कृषि ही रही है। यह स्वयं में एक सृजन है। एक सम्पूर्ण प्राकृतिक विज्ञान है, सृष्टि को गतियमान बनाए रखने की एक अहम कड़ी या कहें युगों–युगांतर से पोषित हो रही सभ्यताओं का जड़ तत्व भी है।

मानव जीवन के पृथ्वी पर अस्तित्व से लेकर अब तक कृषि भरण–पोषण का अभिन्न अंग रही है। भारत में कृषि का उद्‌गम कब, कैसे, क्यों हुआ, इसकी प्रामाणिक पुष्टि करना तो जटिल है, परन्तु पौराणिक साहित्य इस बात का साक्षी रहा है कि भारत में कृषि केवल जीविका का साधन ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक, सांस्कृतिक धरोहर की भाँति है, उत्सवों एवं पर्वों की प्रतीक है। भारतीय कृषि विभिन्न सभ्यताओं को पोषित करती हुई क्रमिक विकास की प्रक्रिया से फलीभूत होती आयी है। गृह्य एवं श्रौत सूत्रों में कृषि से सम्बन्धित धार्मिक कृत्यों का विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। उसमें वर्षा के निमित्त विधिविधान की तो चर्चा है ही, इस बात का भी उल्लेख है कि चूहों और पक्षियों से खेत में लगे अन्न की रक्षा कैसे की जाए। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृषि सम्बन्ध अनेक शब्दों की चर्चा है जिससे तत्कालीन कृषि व्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है।

भारत में ऋग्वैदिक काल से ही कृषि पारिवारिक उद्योग रहा है और बहुत कुछ आज भी उसका रूप है। लोगों को कृषि सम्बन्धी जो अनुभव होते रहे हैं उन्हें वे अपने बच्चों को बताते रहे हैं और उनके अनुभव लोगों में प्रचलित होते रहे। उन अनुभवों ने कालांतर में लोकोक्तियों और कहावतों का रूप धारण कर लिया जो विविध भाषा भाषियों के बीच किसी न किसी कृषि पंडित के नाम प्रचलित है और किसानों की जिह्वा पर बने हुए हैं। हिंदी भाषा भाषियों के बीच ये घाघ और भड्डरी के नाम से प्रसिद्ध है। उनके ये अनुभव आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में खरे उतरे हैं।

वैदिक साहित्य के अनुसार आर्य– कृषकों की सिंचाई प्रधानता कुओं से उसी प्रकार होती थी, जैसे आजकल होती है। तत्कालीन कुओं के नाम 'अवत' और 'उत्स' मिलते हैं। जल चक्र से निकाला जाता था। उस चक्र से वरत्रा (रस्सी) सम्बद्ध होता था और वरत्रा से कोश लगा रहता था। लकड़ी के कुण्ड से आहाव में जल डाला जाता था। जल को सुर्मी या सुषिरा(नाली) से खेतों तक पहुँचाया जाता था। कुल्या नहरों के समान थीं, जिससे जलाशयों में पानी इकट्ठा किया जाता था। भारत में सिंचाई विकास का इतिहास प्रागैतिहासिक समय से शुरू होता है। वेदों और प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में कुओं, नहरों, तालाबों और बाँधों का उल्लेख मिलता है जो कि समुदाय के लिए उपयोगी होते थे और उनका कुशल संचालन तथा अनुरक्षण राज्य की जिम्मेदारी होती थी। सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे हुआ था और जीवित रहने के लिए उन्होंने पानी का लाभ उठाया। प्राचीन भारतीय लेखकों के अनुसार कोई कुआं या तालाब खोदना मनुष्य का सबसे अधिक पुण्य कार्य होता था। विधि और राजनीति के प्राचीन लेखक बृहस्पति का कहना है कि बाँधों का निर्माण और मरम्मत एक पावन कार्य है और इसका भार समाज के सम्पन्न व्यक्तियों के कंधों पर डाला जाना चाहिए। विष्णु पुराण में कुओं, वाटिकाओं और बाँधों की मरम्मत करने वाले व्यक्ति की सराहना की गई है।

पराशर मुनि द्वारा रचित ग्रंथों में 'कृषिसंग्रह', 'कृषि पराशर' एवं 'पराशर तंत्र' के नाम गिनाए जाते हैं। किंतु इनमें से मूल ग्रंथ 'कृषि पराशर' ही है। 'कृषि पराशर' में कृषि पर ग्रह नक्षत्रों का प्रभाव, मेघ और उसकी जातियाँ, वर्षामाप, वर्षा का अनुमान, विभिन्न समयों की वर्षा का प्रभाव, कृषि की देखभाल आदि विषयों पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। ग्रंथ के अध्ययन से पता चलता है कि पराशर के मन में कृषि के लिए अपूर्व सम्मान था। किसान कैसा होना चाहिए, पशुओं को कैसे रखना चाहिए, गोबर की खाद कैसे तैयार करनी चाहिए और खेतों में खाद देने से क्या लाभ होता है, बीजों को कब और कैसे सुरक्षित रखना चाहिए, इत्यादि विषयों का सविस्तार वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है।

इस ग्रंथ से पता लगता है कि पराशर के काल में कृषि अत्यंत पुष्ट कर्म थी। इन ग्रंथों में विस्तार से कृषि उपज की बारीकियों को बताने से लेकर कृषि के लिए उपयोगी औजारों को भी समझाया गया है। किस किस्म की फसलें कहाँ होती है और उनकी पैदावार को बेहतर करने का क्या तरीका है भी इन महान् ग्रंथों में है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में आज भी भारत का पुरातन साहित्य आधुनिक विज्ञान से कहीं आगे है। वैदिक विज्ञान में कृषि की संकल्पना एक चक्र के रूप में दिखाई गयी है। इसमें कृषि और पशुपालन को बराबर का महत्व दिया गया है। इस चक्र में भूमि, पशु और मनुष्य तीनों एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते थे और इन तीनों से यह कृषि चक्र पूरा होता था। इस चक्र में मनुष्य पशु का पालन करता था। पशु भूमि का पालन करते थे और वह भूमि मनुष्य का पालन करती थी। यही वजह है कि वैदिक वांग्मय में पशु पालन को लेकर भी विस्तृत साहित्य मिलता है।

वृहत्तर भारत का स्थापत्य

अभिषेक शुक्ला

सर्वप्रथम मत्स्य पुराण में वृहत्तर भारत की अवधारणा मिलती है, जिसमें भारतवर्ष के साथ दक्षिण पूर्वी एशिया के आठ द्वीपों को शामिल किया है। वृहत्तर भारत का सर्वप्रथम प्रयोग राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक ''भारत की मौलिक एकता'' में किया। वे क्षेत्र जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार प्रसार व्यापार, धर्म प्रचार एवं भारतीय मूल के लोगों द्वारा साम्राज्य स्थापना से हुआ, उसे वृहत्तर भारत कहा जाता है। वृहत्तर भारत में भारतीय सभ्यता व संस्कृति का मध्य एशिया एवं उत्तरी–पूर्वी तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों में प्रसार हुआ। प्राचीनकाल में सांस्कृतिक दृष्टि से मध्य एशिया का प्रदेश भारत के पूर्ण प्रभाव में था। संसार के मानचित्र में आज भारत को जिन भौगोलिक और राजनैतिक सीमाओं में दिखाया जाता है, पहले भारत इतना छोटा या सीमित नहीं था। वह और भी बड़ा था। प्राचीनकाल में भारत की भौगोलिक सीमाएँ काफी विस्तृत थी। भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित आज का अफगानिस्तान भारत का ही हिस्सा था। पूरे मध्य एशिया के भू–भाग में भारत की संस्कृति और जीवन प्रणाली फैली थी। इधर पूर्व में भारत की भौगोलिक सीमाएँ बर्मा (म्यांमार) तक विस्तृत थी। इसके अलावा भारत के दक्षिण–पूर्व में बंगाल की खाड़ी से और भी पूर्व दिशा में स्थित मलाया, जावा, सुमात्रा, बर्मा (म्यांमार) बोर्नियो, बाली, चम्पा, हिन्दचीन, इंडोनेशिया, स्याम, कम्बोडिया तथा सूरीनाम आदि द्वीप समूह और श्रीलंका भारत के ही अंग थे। यहाँ भारत के राजाओं का आधिपत्य था। इन द्वीपों में रहने वाले निवासी भारतीयों की तरह ही जीवन बसर करते थे। तब प्राचीनकाल से लेकर लगभग दसवीं शताब्दी तक वास्तविक स्थिति यह थी कि भारत के पश्चिम में मध्य एशिया के भूभागों से लेकर इधर पूर्व में बर्मा और दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीप समूह तक और उत्तर में तिब्बत से लेकर दक्षिण में श्रीलंका तक के भूभाग में भारतीय जीवन लहराता था। जीवन के विविध पक्षों में भारत और भारत की संस्कृति ही नजर आती थी। तब भारत बड़ा और बड़ासे भी बड़ा नजर आता था। बड़ा शब्द को संस्कृत में 'वृहत्तर' बोला जाता है इसीलिए इतिहासकार एशिया के इस भूभाग को जहाँ प्रचीनकाल से लेकर दसवीं शताब्दी तक भारत की संस्कृति फैली हुई थी, बड़े से बड़ा भारत अथवा 'वृहत्तर भारत' के नाम से पुकारते हैं। संक्षेप में वृहत्तर भारत के अन्तर्गत भारत के भूभाग के साथ उन देशों को सम्मिलित माना जाता है, जहाँ प्राचीनकाल में भारतीयों का राजनीतिक एवं संस्कृतिक प्रभुत्व था। भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग के मध्य में स्थित है। इस स्थिति के कारण ही भारत का अन्य देशों के साथ सम्बन्ध रहना स्वाभाविक था। वृहत्तर भारत में भारतीय प्राचीनकाल में भारत के कई राजा और राजकुमार दक्षिण–पूर्वी एशिया के भागों में गए और वहाँ उन्होंने अपने राज्य एवं उपनिवेश संस्थापित किए। इन भागों में इस प्रकार के राज्यों तथा उपनिवेशों की स्थापना के साथ भारतीय विचारधारा, भाषा, संस्कृति और सभ्यता का सरलतापूर्वक विदेशों में प्रसार हुआ। प्राचीनकाल में भारत एक उन्नत देश था और यहाँ के बने हुए सामान की विदेशों में प्रचुर माँग थी। भारतीय व्यापारी विदेशों में अपना माल बेचने जाते थे। भारत से जाने वाले कई व्यापारी विदेशों में जाकर बस गए थे और कई आते–जाते रहते थे। इन व्यापारियों के दूसरे देशों में आने–जाने और बसने के साथ उन्नत भारतीय सभ्यता और संस्कृति का उन देशों में प्रचार–प्रसार स्वाभाविक था। दक्षिणी पूर्वी द्वीप समूह में चोल राजाओं ने हिन्दू धर्म के प्रचारक भेजे। उनके साथ कई भारतीय साहित्यकार, कलाकार आदि इन देशों में गए और उन सबने मिलकर वहाँ भारतीय संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला, धर्म आदि का प्रचार किया। दक्षिणी–पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों का बोलबाला था। बर्मा तथा स्याम में बौद्ध धर्म का प्रचलन था, जबकि अन्य देशों में पौराणिक हिन्दू धर्म ही विशेष रूप से लोकप्रिय था। पौराणिक देवताओं में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा विशेष लोकप्रिय थे। शैव धर्म तो वहाँ का राजधर्म था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान और इतिहासकार पॉल सीडीस ने कई वर्ष पहले किताब लिखी थी– द हिंदुआइज्ड स्टेट्स ऑफ साउथ ईस्ट एशिया (अनुवादित नाम)। इस किताब में उन्होंने श्रीविजया और यवद्वीप यानी जावा आदि का उल्लेख किया था जो आज इंडोनेशिया के भाग हैं। शिव–पार्वती के पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय को भी जावा में देवरूप में पूजा जाता था। गणेश की मान्यता विघ्न–विनाशक के रूप में थी। विष्णु की पूजा नारायण, पुरुषोत्तम, माधव आदि नामों से की जाती थी। कई स्थानों से विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। उनके प्रतीक के रूप में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म का अंकन मिलता है। चंपा से शेषनाग पर शयन करते हुए विष्णु की मूर्ति प्राप्त होती है। कम्बुज का अंकोरवाट स्थित विष्णु मंदिर वहाँ उनकी लोकप्रियता का जीता–जागता प्रमाण है। दक्षिण–पूर्व एशिया की कला के प्रत्येक अंग पर भारतीय कला का स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसिद्ध कलाविद कुमारस्वामी ने तो दक्षिणी–पूर्वी एशिया की कला को भारतीय कला का ही अंग माना है। नगर–निर्माण, स्थापत्य तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में भारतीय प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक दर्शनीय है।

दक्षिण–पूर्व एशिया के प्रसिद्ध नगरों में अंकोरथोम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो कम्बुज राज्य की राजधानी थी। इसका निर्माण भारतीय नगरों की पद्धति पर हुआ था। यह एक वर्गाकार नगर था, जो चारों ओर से गहरी खाई तथा पत्थर

की दीवारों से घिरा हुआ था। नगर में प्रवेश के निमित्त खाई के ऊपर पाँच पुलों का निर्माण किया गया। इन पुलों से लगे हुए पाँच ऊँचे शिखरों वाले तोरणद्वार थे। नगर के भीतर भव्य एवं अलंकृत महल, मंदिर तथा सरोवर बने हुये थे। इस प्रकार अंकोरथोम न केवल कम्बुज का, अपितु सम्पूर्ण प्राचीन विश्व का एक सुन्दर नगर था। इस मंदिर का पूरा नाम यशोधरपुर था। कभी कम्बोडिया फ्रांस का उपनिवेश हुआ करता था। जब इस देश को फ्रांस से स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो यही मन्दिर कम्बोडिया की अस्मिता और गौरव की पहचान बन गया। यही कारण है कि कम्बोडिया के लोगों ने अपने इस मंदिर को अपने राष्ट्रीय ध्वज में भी स्थान दिया है।

वृहत्तर भारत के स्थापत्य में कम्बुज (कम्बोडिया) के अंकोरवाट का विष्णु मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण 1125 ई. में कम्बुज के राजा सूर्यवर्मा द्वितीय द्वारा करवाया गया था। यह संपूर्ण मंदिर पत्थर का बना है। ढाई मील के घेरे में स्थित इस मंदिर के चारों तरफ लंबी खाई है। मंदिर में जाने के लिये 40 फीट चौड़ा एक पुल बनावाया गया है।

मंदिर तीन हजार फुट की चौकोर पत्थर की मेढी (चबूतरे) पर बना है। प्रवेशद्वार से अंदर जाते ही लगभग आधे मील की परिधि में बनी एक लंबी वीथि (गैलरी) मिलती है। यह मंदिर का प्रदक्षिणापथ है। मंदिर का गर्भगृह ऊँचे स्थान पर स्थित है, जिस पर पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गयी हैं। मंदिर के बीच का शिखर सबसे ऊँचा है। तथा चार कोनों पर चार अन्य शिखर बनाये गये हैं। पूरे मंदिर के निर्माण में कहीं भी चूने अथवा पलस्तर का प्रयोग नहीं मिलता है। मंदिर अपनी मूर्तिकारी के लिये भी प्रसिद्ध है। इसकी दीवारों पर पौराणिक कथाओं का अंकन चित्रों द्वारा किया गया है। रामायण की संपूर्ण कथा यहाँ उत्कीर्ण मिलती है। साथ ही साथ राजाओं, सैनिकों आदि का भव्य एवं कलापूर्ण अंकन प्राप्त होता है। अंकोरवाट का मंदिर मध्यकालीन हिन्दू स्थापत्य की एक उत्कृष्ट रचना है। शताब्दियों की प्राकृतिक आपदाओं की उपेक्षा करते हुये आज भी अपनी सुदृढ़ता एवं भव्यता को सुरक्षित किये हुये है।

बर्मा के पगान में स्थित आनंद–मंदिर की वास्तु कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह 564 फीट के वर्गाकार प्रांगण में स्थित है। मुख्य मंदिर का निर्माण ईंटों से हुआ है। मध्य में बुद्ध की विशाल मूर्ति है तथा मंदिर की दीवारों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित तथा जातक ग्रंथों से ली गयी बहुसंख्यक कथाओं का भव्य एवं कलापूर्ण अंकन हुआ है। संपूर्ण मंदिर भारतीय ढंग से निर्मित लगता है। इन मंदिरों के अलावा चंपा के माइसोन तथा पो–नगर, अंकोरथोम का बोयो मंदिर, जावा का लोरोजोंगरम मंदिर आदि भी सुदूर–पूर्व के हिन्दू वास्तु एवं स्थापत्य के अनूठे उदाहरण हैं। इन सबको देखने से स्पष्ट हो जाता है, कि इनका निर्माण भारतीय कलाकारों ने ही किया होगा। मंदिरों के अलावा विभिन्न स्थानों से बुद्ध, बोधिसत्व, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय आदि देवी–देवताओं की बहुसंख्यक मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो दक्षिणी–पूर्वी एशिया में हिन्दू–तक्षणकला के व्यापक प्रचार–प्रसार की सबल साक्षी हैं। दक्षिण पूर्व एशिया की स्थापत्य कला तथा मूर्तिकला की न सिर्फ विषयवस्तु केवल भारतीय है बल्कि निर्माण शैली तथा निर्माण सामग्री के अवयव भी भारतीय अनुकरण ही प्रतीत होते हैं। विशेषतया कम्बोडिया, जावा, चंपा एवं बाली के कलावशेष भारतीय गुप्त, पल्लव एवं चालुक्य कला पर आधारित हैं।

इस प्रकार दक्षिण–पूर्वी एशिया की सभ्यता भारतीय सभ्यता से पूर्णतया प्रभावित है। जावा स्थित केदू के मैदान में भी प्राचीन मन्दिरों के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। ये सभी मन्दिर आठवीं सदी के हैं। जावा, कम्बुज, चंपा आदि दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के पुराने भग्नावशेषों में सैंकड़ों–हजारों मूर्तियाँ और उनके खण्ड विद्यमान हैं, जो वहाँ पौराणिक हिन्दू धर्म के व्यापक प्रचार के स्पष्ट प्रमाण हैं। जिस प्रकार भारत में राजा, राजकुल के व्यक्ति तथा संभ्रान्त लोग मन्दिरों के निर्माण तथा उनका व्यय चलाने के लिए दान दिया करते थे, ऐसी ही परंपरा कम्बुज में भी विद्यमान थी। वहाँ के बहुसंख्यक अभिलेखों में उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा देवमूर्तियों के प्रतिष्ठापित किये जाने तथा उनके लिए किये गये दान का ही उल्लेख हैं। हिन्दू धर्म के प्रचार के कारण यहाँ वेद, वेदांग, इतिहास–पुराण, दर्शन आदि प्राचीन भारतीय साहित्य का भी भलि–भाँति अध्ययन–अध्यापन होता था।

जावा के समान ही कम्बुज देश में भी राजवंशावली को जानने के लिए कोई साहित्यिक विवरण प्राप्त नहीं होता है। यहाँ से प्राप्त बहुसंख्यक अभिलेखों के माध्यम से ही यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति के अतीत की जानकारी प्राप्त होती हैं। यहाँ से प्राप्त अभिलेखों में संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है। यह भाषा शुद्ध है और उसमें पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि के महाभाष्य में प्रतिपादित व्याकरण सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है। इसका कारण यह है कि भारत के समान कम्बुज में राजा यशोवर्मा के विषय में तो यह भी कहा गया है कि उसने महाभाष्य की व्याख्या भी की थी। भारत में हुए तुर्क आक्रमण के कारण यहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति के विकास में बाधा उत्पन्न हो गयी थी, इस घटनाक्रम के बाद दक्षिण–पूर्व एशिया से भारतीय सम्बन्ध उतने प्रगाढ़ न रह पाये। जिस कारण कम्बुज आदि देशों से प्राप्त इस समय के लेखों में प्राचीन भारतीय संस्कृत व्याकरण के नियमों का लोप होता चला गया। तथापि यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में उत्कीर्ण अभिलेखों में लेखन कला के तौर पर भारतीय परंपरा का अनुसरण किया गया था एवं यह क्षेत्र प्रत्यक्ष रूप से भारतीय प्रभाव में था।

पुस्तक समीक्षा/मिथिलेश यादव

अद्वैत यात्रा का महापथ

आदि शंकराचार्य अपने युग की महानतम विभूति थे। यह उपन्यास महापथ उन्हीं के असाधारण, अद्वितीय चरित्र और कृतित्व पर आधारित है। शंकराचार्य के बारे में यह प्रसिद्ध है कि मात्र आठ वर्ष की आयु में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया। बारह वर्ष तक सर्व शास्त्रवेत्ता बन गए। सोलह वर्ष में उन्होंने भाष्य रचना कर डाली और बत्तीस वर्ष की आयु में उनका महाप्रयाण हुआ। उनके अनेक अनुयायी उन्हें शिव का अवतार भी मानते हैं। शंकराचार्य के दर्शन में सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म दोनों का हम दर्शन, कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म उनका निराकार ईश्वर है तथा सगुण ब्रह्म साकार ईश्वर है। जीव अज्ञान व्यष्टि की उपाधि से युक्त है। तत्वमसि तुम ही ब्रह्म होय अहं ब्रह्मास्मि मैं ही ब्रह्म हूँ 'अयामात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ही ब्रह्म है इन बृहदारण्यकोपनिषद् तथा छान्दोग्योपनिषद वाक्यों के द्वारा इस जीवात्मा को निराकार ब्रह्म से अभिन्न स्थापित करने का प्रयत्न शंकराचार्य ने किया है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर भारत में व्यतीत किया। उनके द्वारा स्थापित 'अद्वैत वेदांत सम्प्रदाय' सर्वकालिक लोकप्रिय है। शंकराचार्य ने उपनिषदों, श्रीमद्भगवद गीता एवं ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे हैं। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र एवं गीता पर लिखे गये शंकराचार्य के भाष्य को 'प्रस्थानत्रयी' के अन्तर्गत रखते हैं। गौड़पाद के शिष्य 'गोविन्द योगी' को शंकराचार्य ने अपना प्रथम गुरु बनाया। यह उपन्यास तथ्यों के साथ रेखांकित करता है कि शंकराचार्य के सबसे प्रबल विरोधी प्रायः बौद्ध थे जो वैदिक धर्म के समस्त रूपों का विरोध करते थे।

जबकि बौद्धधर्म का सार तत्त्वतः वेदान्त दर्शन से भिन्न नहीं है। ऐसे में आचार्य शंकर ने अपनी दिव्य वाग्मिता से बौद्धों और अन्य वेद–विरोधी सम्प्रदायों के लोगों को जिस तरह पराभूत किया,वह एक मिसाल है।

प्रत्येक मनुष्य का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह शाश्वत, दिव्य, कालातीत सत्ता को अपनी आत्मा की तरह से जानकर मोक्षानंद का पान करें। इस अन्तः जागृति के लिए केवल ज्ञान मात्र की अपेक्षा होती है, लेकिन ईश्वर से ऐक्य का ज्ञान तभी संभव होता है जब ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ भक्ति–भाव विद्यमान हो। ऐसी भक्ति एकदेशीय न होकर सार्वकालिक होनी चाहिए।

यह उपन्यास जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के जीवन के तमाम आयामों से गुजरते उनकी धर्म – दिग्विजय यात्रा को जिस तरह विस्तार एवं रोचकता के साथ प्रस्तुत करता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

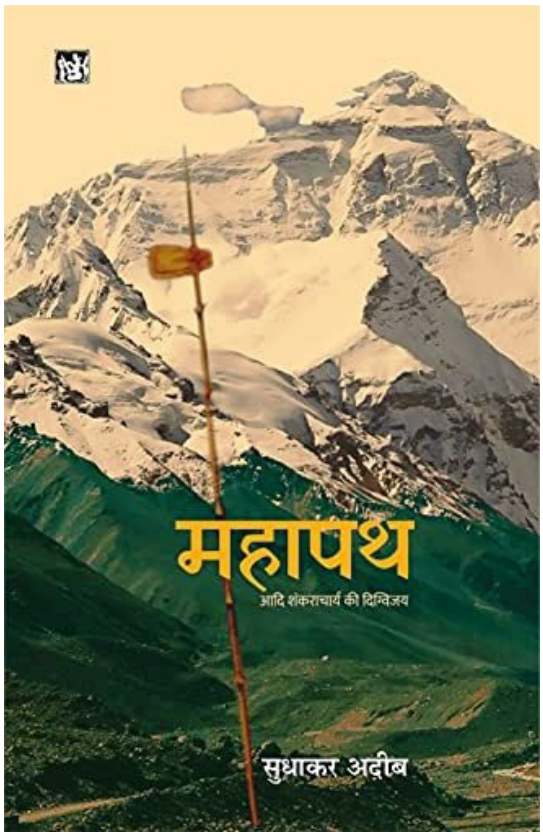

पुस्तक–महापथ
लेखक– सुधाकर अदीब
प्रकाशक–लोकभारती

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com